इकाई 1 अठारहवीं सदी की व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 अठारहवीं शताब्दी : प्रमुख विशेषताएँ
1.3 अठारहवीं शताब्दी संबंधी वाद-विवाद
1.4 मुगल साम्राज्य, इसका पतन और अठारहवीं शताब्दी का प्रारंभ
1.5 क्षेत्रीय राज्य व्यवस्थाओं के उद्‌भव का सामाजिक-आर्थिक संदर्भ
1.6 सारांश
1.7 शब्दावली
1.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित समझ पाएंगेः

- अठारहवीं सदी की मुख्य विशेषताएँ,
- अठारहवीं सदी के बारे में विभिन्न इतिहासकारों के विचार, और
- मुगल साम्राज्य के पतन और क्षेत्रीय राज्य-व्यवस्थाओं के उदय के कारण।

1.1 प्रस्तावना

भारतवासियों के लिए अठारहवीं शताब्दी वह काल था, जब स्थायी परम्पराओं का पतन हो रहा था। इतिहास में मुगल साम्राज्य कभी भी इतना असुरक्षित नहीं प्रतीत हुआ। उसके किलों को अफगानी लुटेरे (नादिरशाह 1739 और अहमदशाह अब्दाली 1748-1767), मराठा साहसिक (पेशवागण) और अन्य योद्धा किसान समूहों (जाट, रोहिला और सिख) के लगातार आक्रमणों को सामना करना पड़ा, और सैन्य अधिकारी तंत्र (*मनसबदारी प्रथा*) जो साम्राज्य का गर्व और मुख्य आधार थे, कुछ भी करने में अपने को अक्षम पा रहे थे। आर्थिक व्यवस्था टूट चुकी थी और जिसके परिणामस्वरूप कुलीन और भद्र वर्ग, तथा उनके आश्रितों के जीवन-स्तर पर इसका विपरीत प्रभाव पड़ा। साम्राज्य का दिवाला निकल चुका था और राजनीतिक अधिशासन और आर्थिक ईमानदारी गायब हो चुकी थी और यही काफी नहीं था। तैमूर वंश पर सबसे बड़ा कंलक यह था कि दो बादशाह अहमद शाह (1748-54) और शाह आलम (1759-1816) को अन्धा कर दिया गया और आलमगीर द्वितीय (1754-1759) की आपसी गुटबाजी में कुलीन-वर्ग द्वारा हत्या कर दी गई।

जिस तीव्र गति से यह सब हुआ वह आश्चर्यजनक था। 1700 में औरंगजेब के शासनकाल में मुगल साम्राज्य अपनी क्षेत्रीय पराकाष्ठा पर था। परन्तु 1730 के आसपास उसके कई सारे भाग राजनीतिक कारणों से क्षेत्रीय राज्यों में खंडित हो चुके थे। इनमें कुछ, जैसे अवध की नवाबी या बंगाल की निज़ामत उत्तराधिकारी राज्यों के रूप में उभरे और दूसरे, जैसे मराठा और जाट मुगल साम्राज्य के दीर्घकालीन और हिंसक विरोध का परिणाम थे। और आगे आने वाले तीस सालों में तो भारत की राजनीतिक तकदीर किसी दूसरी दिशा में ही मुड़ती दिखाई देती है। अंग्रेजों की ईस्ट इंडिया कम्पनी, जो एक यूरोपीय शक्ति थी, पूर्वी भारत में काफी क्षेत्रों को जीत लेने में सफल हो चुकी थी और उपमहाद्वीप के दूसरे भागों में भी दखल डालने लगी थी। राजनीतिक मामलों में इन सफलताओं के आधार पर कम्पनी धीरे-धीरे परन्तु निश्चित रूप से दृढ़ता से उपनिवेशी राज्य का प्रारम्भ करने की दिशा में बढ़ रही थी। इन आश्चर्यजनक परिवर्तनों को देखते हुए यह कोई आश्चर्य की बात नहीं

BHIC-134 (HINDI)_NEW SETTING.indd 9 24-03-2021 11:47:17

कि उस समय के लोग सोचने लगे थे कि उनकी दुनिया उलट-पुलट हो रही है।

इन परिवर्तनों को देखते हुए कई आधुनिक इतिहासकार अठारहवीं शताब्दी के अध्ययन की ओर आकृष्ट हुए हैं और इसी कारण अठारहवीं शताब्दी संबंधी अध्ययन इतिहासकारों के मध्य उतेजनापूर्ण वाद-विवाद का केन्द्र बन गया है। इससे इस शताब्दी के इतिहास लेखन में अभिनव विकास आया है। व्याख्याओं में कई पहलुओं पर काफी मतभेद है, परन्तु कुछ विषयों पर सर्वसम्मति है। पुरानी व्याख्या के अनुसार मुगल साम्राज्य का पतन औरंगजेब की धार्मिक कटट्रतापूर्ण नीति के कारण हुआ। अब सर्वसम्मति से इसे अस्वीकार किया जाता है। जहाँ औरंगजेब ने मराठा, जाट और कुछ राजपूत वंशों के विरोध का सामना किया, वहीं उसे समान रूप से मुस्लिम कुलीन वर्ग और अधिकारियों के विरोध का भी सामना करना पड़ा, जो शाही दरबार में अन्ततः गुटबाजी और संघर्षों को बढ़ाने में सहायक रहे। दूसरी ओर कई शक्तिशाली राजपूत शासक साम्राज्य के प्रति वफादार बने रहे।

पुरानी रूढ़िबद्ध धारणा कि यह शताब्दी नैतिक अवनति और सांस्कृतिक पतन का काल थी को भी अस्वीकार किया जाता है। अब आंचलिक क्षेत्रों के संतुलित तथा सक्रिय सांस्कृतिक जीवन के अध्ययन पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। इनमें से कई क्षेत्रीय राज्यों ने मुगल संस्कृति की विरासत को आगे बढ़ाया और उसे क्षेत्र विशेष की सांस्कृतिक विरासत में मिलाया। लखनऊ और हैदराबाद साहित्य और कला के संरक्षण और सांस्कृतिक विकास के प्रमुख केन्द्र बन गए। अठारहवीं शताब्दी का बनारस धार्मिक शिक्षा और तीर्थयात्रा के केन्द्र के साथ-साथ उत्तर भारत में बैंकिंग और व्यापार के केन्द्र के रूप में उभरा। बंगाल में नाडिया संस्कृत शिक्षा और दयाभागा हिन्दू कानून संबंधी शिक्षा का केन्द्र था और बिष्णुपुर में क्षेत्रीय स्थापत्य कलाओं और संगीत की विविध शैलियाँ पनपी और समृद्ध हुई। दक्षिण में मराठा शासकों के संरक्षणत्व में तंजौर एक प्रसिद्ध धार्मिक, संगीत और नाट्य परम्पराओं का केन्द्र बन गया।

आज इतिहासकार मुगल साम्राज्य की अवनति और उसके परिणाम को धार्मिक कट्टरता और कुछ शासक विशेष की कमजोरी न मानकर एक संरचनात्मक प्रक्रिया से घटने वाली संरचनात्मक असफलता का परिणाम मानते हैं न कि किसी व्यक्तिगत असफलता का नतीजा। परन्तु इस संरचनात्मक असफलता के कारणों और प्रकृति पर बहुत मतभेद है। कुछ लोग इस अवनति को आर्थिक संकट का परिणाम मानते हैं जो एक अति-शोषक शासक वर्ग के कारण उत्पन्न हुआ। कुछ का मानना है कि यह पूरी प्रक्रिया क्षेत्रीय पुनरुत्थान का परिणाम है, जो अन्ततः दीर्घकालीन आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करती है। राज्य और समाज के बदलते संबंधों के बारे में भी अलग-अलग व्याख्याएँ हैं – आर्थिक विकास का क्या पैटर्न और प्रक्रियाएँ थीं? साम्राज्य और स्थानीय क्षेत्रों में विकास से होने वाले लाभ के बंटवारे पर झगड़े संबंधी विवाद का प्रश्न, आदि।

परन्तु अठारहवीं शताब्दी मुगल साम्राज्य की अवनति और क्षेत्रीय राज्यों के सुदृढ़ीकरण तक ही सीमित नहीं थी। इस शताब्दी के बीचोंबीच उपमहाद्वीप में और भी कई मौलिक परिवर्तन आ रहे थे। इनके बारे में इतिहासकारों की कई व्याख्याएँ हैं परन्तु वह आपस में नहीं मिलती। वाद-विवाद के कई क्षेत्र हैं : पहला कम्पनी का व्यापारिक से राजनीतिक सत्ता में परिवर्तन। दूसरा, भारत में उपनिवेशवाद की जड़ें बर्हिजात (exogenous) थीं या स्थानीय; और तीसरा इसके सामाजिक और आर्थिक प्रभाव क्या थे? इन्हीं में निरन्तरता और परिवर्तन के प्रश्न और इन सबका नए औपनिवेशिक ढाँचे में क्या महत्व है, ये सब प्रश्न आपस में उलझे हुए हैं।

1.2 अठारहवीं शताब्दी : प्रमुख विशेषताएँ

व्यापक कार्यरत प्रक्रियाओं और विचारों के विस्तृत क्षेत्र को समझने के लिए इस शताब्दी की निम्नलिखित प्रमुख विशेषताओं को ध्यान में रखना चाहिए।

पहला, अठारहवीं शताब्दी ने दो परिवर्तन देखे। प्रथम, जब मुगल साम्राज्य का विभाजन हुआ और वह क्षेत्रीय और उससे भी छोटी सत्ताओं में बँट गया। साम्राज्य में आए संकट,

BHIC-134 (HINDI)_NEW SETTING.indd 10 24-03-2021 11:47:17

जिसके परिणामस्वरूप उसका विखण्डन हुआ, वही इस परिवर्तन का मुख्य कारण है। जहाँ यह क्षेत्रीय और सामाजिक गुटों में राजनीतिक शक्ति का पुनर्वितरण मात्र था, वहीं दूसरा परिवर्तन कहीं अधिक गहरा था। यह लगभग शताब्दी के मध्य में अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा प्लासी (1757) और बक्सर (1763) के युद्ध के पश्चात् राजनीतिक प्रभुत्व प्राप्त कर लेने पर हुआ। इसके परिणामस्वरूप कुछ नए बदलाव आए। सबसे बड़ा परिवर्तन सामुद्रिक व्यापार संगठन में हुआ। ईस्ट इंडिया कम्पनी का अब भारत पर प्रभुत्व स्थापित हो चुका था और उसने अपने राजनीतिक आधिपत्य को सैन्य और व्यापारिक कार्यों में प्रयुक्त किया।

दूसरा, इतिहासकारों ने अठारहवीं शताब्दी के प्रभावों को पूर्ण रूप से समझने के लिए इसे एक 'दीर्घकालीन' शताब्दी के रूप में देखते हैं। नवीन व्याख्याओं के अनुसार इस शताब्दी की राजनीतिक-गतिशीलता के बीज 1680 के आसपास मुगल साम्राज्य के विखंडन में देखे जा सकते हैं। विघटनकारी परिणामों में 1720 के पश्चात् क्षेत्रीय राजनीति में स्थिरता के लक्षण दिखाई देते हैं। 1750 से कम्पनी के आधिपत्य में नए राजनीतिक सम्बन्धों का प्रारम्भ होता है। यह प्रक्रिया 1820 तक जारी रही जिसमें प्रायः सभी स्वदेशी राज्यों का विलय अंग्रेज शासित इलाकों में कर लिया गया या वे कम्पनी के सहायक संधि के तहत मित्र बन गए। इस प्रकार अठारहवीं शताब्दी राजनीतिक महत्व की दृष्टि से सत्रहवीं-अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम दो दशकों और उन्नीसवीं शताब्दी के पहले तीन दशकों को अपने में आत्मसात करती है। आर्थिक परिप्रेक्ष्य से भी 'दीर्घकालीन' शताब्दी की धारणा लाभप्रद है। अब इस बात के ठोस प्रमाण हैं कि क्षेत्रों में राजनीतिक पुनर्स्थिति के साथ क्षेत्रीय आर्थिक पुनरुत्थान भी हुआ। कुछ स्थानों में अवनति हुयी। वहीं दूसरे स्थानों में आर्थिक उन्नति देखने को मिलती है। जिसका नेतृत्व स्थानीय भूमिपति वर्ग और व्यापारिक वर्ग ने किया। प्रचलित मत, जो शताब्दी के मध्य से आर्थिक अव्यवस्था पर जोर देता है, की तुलना में आधुनिक शोधों से पता चलता है कि कम्पनी के सत्ता में आ जाने से देशी संरचनाओं पर जोर पड़ने के बावजूद वे एकदम नष्ट नहीं हुयी। बंगाल में भी, जहाँ कम्पनी का शासन सबसे अधिक अन्तर्वेधी था, व्यापार और कृषि में समृद्धि आई हालांकि थोड़े परिवर्तित रूप में। उन्नीसवीं शताब्दी के पहले दो दशकों तक स्थिति ऐसी ही बनी रही जब अठारहवीं शताब्दी की समृद्धि की धीमी गति धीरे-धीरे समाप्त होने लगी।

तीसरा, एक अर्थपूर्ण परिप्रेक्ष्य जो हाल में उभर कर आया है वह भारतीय अर्थव्यवस्था और विश्व अर्थव्यवस्था के मध्य सम्बन्धों का अवलोकन करता है। हिन्द महासागर अटलांटिक और प्रशांत महासागर के साथ एक विस्तृत व्यापारिक नेटवर्क का हिस्सा था और प्रारंभिक आधुनिक व्यापार के यूरोपीयकरण ने अठारहवीं शताब्दी में भारत के व्यापारिक जीवन की प्रकृति और भविष्य पर प्रभाव डाला। व्यापार की इस लम्बी अवधि में भारत ने हमेशा वस्तुओं और सेवाएँ प्रदान की थीं। इस माँग का निर्धारण यूरोपीय व्यापार के विश्वव्यापी नेटवर्क द्वारा किया जाता था। भारत के दृष्टिकोण से इसमें पर्याप्त मात्रा में लाभ था और इस माध्यम से भारत में काफी धन आया। अठारहवीं शताब्दी को समझने के परिप्रेक्ष्य से ये परिणाम महत्वपूर्ण हैं। मुगल और उत्तर-मुगल के बीच निरन्तरता की समस्या और उनसे उपनिवेशवाद के प्रारम्भिक वर्षों की समस्याओं को तभी समझा जा सकता है अगर यह ध्यान रखा जाए कि भारत का व्यापारिक जीवन और पूँजी विस्तृत रूप से संबंधों के सिलसिलों से जुड़ी हुई थी जिसकी अन्तः प्रेरणा आगरा और दिल्ली के साथ-साथ अफ्रीका, दक्षिण-पूर्व एशिया और यूरोप से आती थी। प्रारम्भिक उपनिवेशवाद की मध्यस्थता ने इस समावेश की प्रक्रिया को और भी गहरा कर दिया। इसका एक उदाहरण हमें अठाहरवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अन्तर-एशियाई व्यापार में आए परिवर्तनों में दिखाई पड़ सकता है जब भारत और पश्चिम-एशिया के बीच का प्रारंभिक संयोजन, अंग्रेजी व्यापार की देखरेख में पूर्व और दक्षिण-पूर्व एशिया की दिशा में मुड़ गया। क्योंकि अठारहवीं शताब्दी में सत्रहवीं शताब्दी की तुलना में (जो एक संकटपूर्ण समय माना जाता है) विश्वव्यापी आर्थिक विस्तार हुआ और भारत का समुद्री व्यापार इस समय असाधारण रूप से बढ़ा इसलिए कोई भी दृष्टिकोण जो अठारहवीं शताब्दी को आर्थिक पृथकीकरण का युग मानता है, संदिग्ध माना

BHIC-134 (HINDI)_NEW SETTING.indd 11 24-03-2021 11:47:17

जाना चाहिए।

बोध प्रश्न-1

1) अठारहवीं शताब्दी में देखे गए दो संक्रमण क्या हैं?

....

....

....

2) अठारहवीं शताब्दी में भारतीय अर्थव्यवस्था और वैश्विक अर्थव्यवस्था के बीच क्या संबंध था?

....

....

....

1.3 अठारहवीं शताब्दी संबंधी वाद-विवाद

अठारहवीं शताब्दी में तीव्रता से इतने महत्वपूर्ण परिवर्तन आए कि स्वाभाविक है कि लगभग हर विषय पर विभिन्न व्याख्याएँ हैं जो एक दूसरे से भिन्न हैं। मोटे तौर पर पर यह वाद-विवाद इस शताब्दी को दो भागों में बाँटे जाने से शुरू होता है और भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों के समर्थकों को भी दो भागों में बाँटा जा सकता है। यहाँ हम 1750 तक के समय को लें तो दो तरह के मत मिलते हैं– साम्राज्य-केन्द्रित और क्षेत्र केन्द्रित विचार। 1750 के बाद भी हमें दो विचार भारतीयता और यूरोपीयकरण के समर्थन में मिलते हैं। अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध की चर्चा करते हुए कुछ इतिहासकार मुगल साम्राज्य और उसकी संस्थाओं की केन्द्रीयता और समाज और अर्थव्यवस्था की प्रक्रिया में उसकी भूमिका को मुख्य मानते हैं। इस दृष्टिकोण के अनुसार साम्राज्य के पतन के विध्वंसक परिणाम हुए। इस विचारधारा के कट्टरवादियों के विचार में इस पतन से देश में राजनीतिक अव्यवस्था और अराजकता आ गई। हाल की व्याख्याओं में इस पतन को संरचना के ह्रास के रूप में देखा गया है। लेकिन इन सबसे कुछ भी कोई सकारात्मक विचार नहीं उभर पाया। साम्राज्य के पतन के बाद उभरने वाले क्षेत्रीय राज्यों पर आरोप लगाया जाता है कि वे अपने को, पहले से ज्यादा, जितना उनका विकास एक मुगल *सूबे* के रूप में था उससे अधिक विकसित नहीं कर पाए। जाट, सिख और मराठाओं के विरोधी आन्दोलनों को यह विचार लुटेरों के दलों से ज्यादा नहीं मानता।

इसके विपरीत वे हैं, जो घटनाओं को क्षेत्रीय और स्थानीय परिप्रेक्ष्य से देखते हैं। साम्राज्य केन्द्रित विचार, जो साम्राज्य की प्रमुख भूमिका को स्वीकार करते हैं, के विपरीत क्षेत्र-केन्द्रित विचार साम्राज्य के विभिन्न भागों में रहने वाले सामाजिक समूहों को अपना केन्द्र बनाते हैं। उन्होंने किस प्रकार राजनीतिक और आर्थिक प्रक्षेप-पथों की गति को अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए बदल दिया। एक स्तर पर, मुगल क्षेत्रीय शासन को मूलतः बदल दिया गया जिससे बंगाल, अवध और हैदराबाद में स्वायत्त राज्यों की स्थापना हुई। दूसरे स्तर पर मराठा और सिख जैसी राजनीतिक शक्तियों का उदय हुआ। जिनका उदय मुगलों के विरोध के रूप में हुआ था परन्तु उन्होंने जो राजनीतिक तन्त्र खड़ा किया उसमें उन्होंने ज्यादातर मुगल प्रशासनिक पद्धतियों का ही प्रयोग किया। इस बदले हुए क्षेत्रीय परिप्रेक्ष्य में अधिकारियों ने मुगल कुलीन-वर्ग को क्षेत्रों में अपनी शक्ति और मजबूत करने का मौका दिया। इसके अतिरिक्त, उनके परिवार और आश्रितों को कृषि पर *मालिकाना* अधिकार स्थापित करने और राजस्व को *इजारे* या ठेके पर लेने का मौका मिला जो धीरे-धीरे आने वाले समय में उनकी पुश्तैनी जायदाद बन गई। क्षेत्रों में व्यापारिक विकास से इनकी स्थिति और मज़बूत हुई।

1750 के बाद की स्थिति के बारे में यूरोपवादी विचार एक विजयी, विस्तारवादी (मुख्य रूप से ब्रिटेन) के प्रभुत्व को प्रमुखता देते हैं जिसने अराजकता और अव्यवस्था से घिरे हुए

BHIC-134 (HINDI)_NEW SETTING.indd 12 24-03-2021 11:47:17

भारत को हराया। यह भारत के राष्ट्रवादी और मार्क्सवादी इतिहासकारों का सबसे प्रमुख दृष्टिकोण है, जो भारत के आर्थिक पिछड़ेपन के कारणों पर श्रेष्ठ ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत करता है। राष्ट्रवादी विचारधारा अठारहवीं शताब्दी में भारत में फैली अराजकता को देश के इतिहास में एक क्षणिक, पर भयंकर भूल मानते हैं जिसने पनपते हुए राष्ट्र को एक विदेशी शक्ति के अधीन कर अपने आपको उसका उपनिवेश बना दिया। परम्परागत मार्क्सवादी विचारधारा अंग्रेजी शासन को एक आवश्यक बुराई मानती है क्योंकि इससे अठारहवीं शताब्दी के सामन्तवादी विघटन का अन्त हुआ। हाल के कुछ विद्वान, इसे ऐसे रूप में देखते हैं जो निरन्तर लाभ, वस्तुओं तथा बाजारों की खोज में था और जिसका कोई प्रगतिशील पहलू नहीं था। परन्तु अठारहवीं शताब्दी के बारे में इतिहासकारों के दृष्टिकोण में कुछ सामान्य मान्यताएँ हैं। पहली यह कि व्यवस्था और स्थिरता एक बड़ी अखिल-भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में ही हो सकती है और चूँकि यह स्थिरता अठारहवीं शताब्दी में समाप्त हो गई, इसलिए इस काल में अव्यवस्था, अराजकता और पतन आया। दूसरा, यह सभी ने माना है कि इस शताब्दी में विच्छिन्नता आई। दोनों विचार के समर्थक अंग्रेजी शासन को एक मूलभूत वियोजन मानते हैं जो विदेशी और अनजान आधिपत्य पर आधारित था तथा जो भारतीय अधिशासन या संस्कृति की परम्पराओं से बहुत दूर था।

दूसरी ओर, भारतवादी परिप्रेक्ष्य उपनिवेशवाद के इस संक्रमण-काल को विभेदक मानते हैं। अंग्रेजों की बढ़ती हुई शक्ति को विजय और अधीनीकरण का एकतरफा प्रक्रम न मानकर भारत के साथ यूरोप (विशेषतः अंग्रेजों का) की एक लम्बे अरसे के लिए सम्बद्धता मानते हैं। भारत पर एक विदेशी शासन की शक्ति के बल पर उपरोपण के स्थान पर इस बात पर जोर दिया जाता है कि किस तरह से भारतीय समाज की परिस्थितियों ने अंग्रेजी शासन को बढ़ावा दिया। इस तर्क के अनुसार, भारत में अंग्रेजी शासन के निर्धारण में महानगरीय स्वार्थों के साथ-साथ भारतीय कारकों का भी योगदान था। भारतवादी दृष्टिकोण रखने वाले अठारहवीं शताब्दी को मात्र अराजकता से भरपूर काल नहीं मानते, उनके मतानुसार मुगल साम्राज्य के 'उत्तराधिकारी' राज्यों ने भारत को राजनीतिक स्थिरता प्रदान की। भारतवादी साम्राज्य के टूटने को आर्थिक पश्चगमन नहीं मानते, उनका मानना है कि अठारहवीं शताब्दी में भी भारत की व्यापारिक और सैन्य-कुशलता बनी रही और कम्पनी ने इसका अपने लाभ के लिए प्रयोग किया। जहाँ एक ओर इस अनाधिकार प्रवेश का जोरदार देशी विरोध रहा, वहीं दूसरी ओर भारत में अंग्रेजी शासन की सफलता के पीछे देशी कारकों का विशेष योगदान रहा। अंग्रेजी शासन भारतीय शासन प्रणाली के आदर्शों, कृषि-व्यापारिक प्रबंधों और मानव संसाधनों की दक्षता पर आधारित था, परन्तु उसने उसे अपने उद्देश्य के अनुसार ढाल लिया। भारतवादी दृष्टिकोण के मतानुसार, अठारहवीं शताब्दी किसी अवरुद्धता को नहीं इंगित करती, बल्कि उसमें एक गहरी निरन्तरता थी, जिसमें पहले से चली आ रही संस्थाएँ और संचनाएँ बनी रहीं। यद्यपि उनका रूप बदल गया और चारों ओर व्यावसायिक प्रक्रियाओं का विस्तार हुआ। इस मत पर प्रचार करने वाले अक्सर असंगत रूप से 'कैम्ब्रिज स्कूल' कहलाते हैं क्योंकि इनमें से कई अमेरिका में रहते हैं और कई भारतीय इतिहासकारों का भी यही दृष्टिकोण है। इन्हें कुल मिलाकर 'संशोधनवादी' इतिहासकार की संज्ञा दी गई है।

1.4 मुगल साम्राज्य, उसका पतन और अठारहवीं शताब्दी का प्रारंभ

मुगल साम्राज्य की अवनति के बारे में बहुत कुछ लिखा गया है। जैसा कि पहले कहा गया है, नैतिक भ्रष्टता का सिद्धान्त, कमजोर शासक और साम्प्रदायिक नीति को गम्भीरता से लेने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि वह आनुभाविक तौर पर खरी नहीं उतरती। फरूखसियार जैसे बाद के मुगल शासकों ने इस पतन को रोकने की कोशिश की। हमें ऐसा कोई साक्ष्य नहीं मिलता जिससे प्रतीत हो कि इन बादशाहों ने अपनी जिम्मेदारी नहीं निभाई, परन्तु घटनाएँ इतनी तेजी से घट रही थीं कि किसी एक व्यक्ति विशेष द्वारा काबू में कर पाना संभव नहीं था। अन्य विचार, तीव्रता से बिखरती संरचना पर, साम्राज्य के आर्थिक और *जागीरदारी* व्यवस्था में आए संकट पर अपना ध्यान केन्द्रित करती हैं,

BHIC-134 (HINDI)_NEW SETTING.indd 13 24-03-2021 11:47:17

जिनसे अधिशासन जोखिम में पड़ गया था। इस विषय पर विस्तृत रूप से लिखा गया है। इरफान हबीब के तर्क इस संबंध में सबसे प्रभावशाली रहे हैं। हबीब का मानना है कि एक ओर अर्थव्यवस्था के विस्तार की क्षमता स्वयं में बुनियादी तौर पर अपने आप में सीमित थी। मुगल अर्थव्यवस्था की प्रवृत्ति थी कि किसानों से अधिक से अधिक अधिशेष हथिया लें। इसने एक त्रि-ध्रुवीय संघर्ष – कुलीन वर्ग, *जमींदार* और किसानों के बीच – को जन्म दिया। यह संघर्ष शीघ्र ही इतना बढ़ गया कि उसे नियंत्रित करना या रोकना असंभव हो गया। सतीश चन्द्र के अनुसार, साम्राज्य के पतन का प्रमुख कारण राज्य के अधिकारियों की *जागीर* प्रथा की कुशलता को बनाए रखने की असमर्थता था जिसने आपसी गुटबाजी में तीव्र संघर्ष को जन्म दिया। इसी धारा में अथर अली का मानना है कि *जागीरों* की अत्यधिक कमी इस पतन का एक बड़ा कारण था। औरंगजेब के दक्षिण अभियानों के परिणामस्वरूप भू-आवंटन के आकांक्षियों की संख्या में अत्यधिक वृद्धि हुई जिससे *जागीर* व्यवस्था चरमरा गई। जॉन रिचर्ड्स द्वारा इसमें विशेष संशोधन किया गया। उनका कहना था कि दक्षिण में *बे-जागीरी (ज़ागीर* के बिना) कोई समस्या नहीं थी क्योंकि उस क्षेत्र में भू-आवंटन की कमी नहीं थी। परन्तु समस्या दक्खनी स्थानीय विशिष्ट वर्गों द्वारा एक उचित व्यवस्था की स्थापना था। दक्खन में उचित शासन व्यवस्था की स्थापना करना साम्राज्य की प्रमुख समस्या थी। साम्राज्य की सुदृढ़ीकरण की दिशा में असफलता के कारण स्थिति संकटपूर्ण हो गई। यह असफलता विशेषकर मुगल साम्राज्य की स्थानीय कृषि पर आधारित आभिजात्य वर्ग को सही तौर पर समाविष्ट न कर पाने के कारण थी, जिसके कारण साम्राज्य में दरार पड़ गई।

मार्शल हॉगसन एक रोचक तर्क प्रस्तुत करते हैं। उनका मानना है कि तीनों मुसलमान साम्राज्य – ऑटोमन, सफविद और मुगल – इसलिए सफल नहीं हए क्योंकि वे समान रूप से एक ही धर्म का पालन करते थे बल्कि उनकी सफलता का प्रमुख कारण गोला-बारूद का सही प्रयोग था। उनकी कमज़ोरी और पतन का भी मुख्य कारण यही था कि वे पश्चिमी गोलार्द्ध में युद्ध के क्षेत्र में बदलती हुई नई तकनीकियों को सफलतापूर्वक अपना न सके। क्या यही तर्क भारत पर भी लागू होता है? हाल में इक्तिदार आलम खान ने हमारा ध्यान गोला-बारूद, केन्द्रीयकरण, और प्रतिरोध के बीच की समकालिक अनुकूलता की ओर आकृष्ट किया है। बन्दूक, तोप और गोला-बारूद्ध ने जहाँ साम्राज्य की शक्ति को बढ़ावा दिया वहीं शक्तिशाली प्रजा द्वारा उनका प्रयोग अपने को सशस्त्र करने के लिए और राज्य के हस्तक्षेप का विरोध करने के लिए किया। तत्कालीन परिस्थितियों में इस महत्वपूर्ण तकनीकी ज्ञान को नीचे सामान्य जनता तक पहुँचने से रोक पाना असम्भव था। अतः गोला-बारूद्ध और अस्त्र-शस्त्रों पर राज्य के एकमात्र नियंत्रण का सिद्धांत इसलिए कामयाब सिद्ध नहीं होता क्योंकि, *जमींदार*, चौधरी और प्रमुख कृषक समूहों के पास बड़े पैमाने पर सशस्त्र-सेना थी। मराठा, सिख और जाटों के अलावा ग्रामीण क्षेत्रों के विशिष्ट व्यक्तियों के पास भी बन्दूकों का भरपूर भंडार था। यह स्मरण योग्य हैं कि इन लोगों को अपने समाज/जाति में उच्च स्थिति के कारण कुछ परम्परागत अधिकार और अनुलाभ मिले हुए थे। इससे वे जरूरत पड़ने पर अपनी सेना की संख्या बढ़ा सकते थे, जो प्रायः वे करते भी थे। मुगल सेना के पास हालांकि अत्यधिक मात्रा में सैन्य सामग्री थी, परन्तु इसके बावजूद उन्हें स्थानीय सरदारों से हमेशा खतरा रहता था क्योंकि ग्रामीण इलाकों में उनकी अवस्थिति उनके अनुकूल थी। अठारहवीं शताब्दी तक राज्य और स्थानीय सरदारों के पास समान रूप से सैन्य-तकनीकी उपलब्ध थी क्योंकि ग्रामीण इलाकों में एक व्यापक उथल-पुथल थी। स्टुअर्ट गॉर्डन ने यह दर्शाया है कि अठारहवीं शताब्दी में मराठाओं ने किस प्रकार एक बहुत बड़े और पंचमेल सैन्य श्रमिक बाजार का उपयोग किया जिसमें यूरोपीय भी शामिल थे।

इसलिए, मुगल साम्राज्य के पतन को समझने के लिए दीर्घकालीन और अल्पकालिक (conjunctional) दोनों ही दृष्टिकोणों की आवश्यकता है। दीर्घकालीन दृष्टिकोण यह है कि मुगल साम्राज्य ने शक्ति के केन्द्रीयकरण के लिए कई संस्थाओं की नींव रखी, परन्तु दुर्भाग्यवश इनसे साम्राज्य की सांस्थानिक और आर्थिक व्यवस्थाओं में समय-समय पर संकट

BHIC-134 (HINDI)_NEW SETTING.indd 14 24-03-2021 11:47:17

आया, जिनका समाधान मुगल शासक प्रभावशाली ढंग से नहीं कर पाए। उदाहरण के लिए सरकार भू-राजस्व निर्धारण (*जमा*) और वास्तविक कर-वसूली (*हासिल*) में सामंजस्य नहीं स्थापित कर पाई। इसी प्रकार ग्रामीण क्षेत्रों से राजस्व प्रेषण में 20 प्रतिशत तक की क्षति को कम करने में सक्षम सिद्ध नहीं हुई। मुगल साम्राज्य की एक संरचनात्मक असमर्थता भी थी कि वह स्थानीय विशिष्ट वर्ग और सरकार के साथ सामंजस्य नहीं स्थापित कर पाई। दोनों निरंतर विरोध की स्थिति में रहते थे। निश्चित रूप से कभी-कभी दोनों में पुनर्मेल के उदाहरण भी मौजूद हैं। उदाहरण के लिए, अकबर की राजपूत नीति। परन्तु इसका प्रभाव क्षेत्र पूरे राजपूताना तक विस्तृत नहीं था न ही यह समस्त राजपूत वंशों के लिए थी और न ही यह राजनीतिक संघर्ष को रोक पाई। सरकार द्वारा साम्राज्य में दूर-दूर तक फैले हुए छोटे-छोटे *ज़मींदारों* के साथ कोई व्यवहारिक सम्बन्ध स्थापित न कर पाने की अक्षमता, जिसमें दोनों की सम्मति हो, ने समस्याएँ और बढ़ाई। *मसावत* और *ज़ोरतलाब* (ऐसे क्षेत्र जो हमेशा विद्रोही रहे हों) इलाके *सर-ए-हासिल* इलाकों के साथ-साथ थे। ये दीर्घकालीन संरचनात्मक समस्याएँ थीं।

अल्पकालिक समस्या दक्खन के संकट के रूप में उभरी और उत्तरी भारत में गंगा-यमुना दोआब क्षेत्र में चले आ रहे जाट और मेवातियों के दीर्घकालीन विरोधी-आन्दोलन और पंजाब में सिखों के विरोध ने विशेषकर गंभीर रूप धारण किया। पूर्वी भारत जैसे क्षेत्रों में जहाँ सत्रहवीं शताब्दी में विशेष रूप में व्यापार और वाणिज्य का विस्तार हुआ, पेशकश (tribute) वसूली में कठिनाई रही क्योंकि *ज़मींदारों* ने राजस्व के ढीलेपन का अपने हित में पूरा लाभ उठाया। हालांकि साम्राज्य की राजनैतिक स्थिरता में कोई अन्तर नहीं आया, परन्तु इससे आर्थिक कठिनाइयाँ बढ़ी। इसके साथ दो और एशियाई साम्राज्यों में भी संकट पैदा हो गया जिससे भारत और पश्चिमी एशिया का व्यावसायिक रूप से अत्यंत लाभप्रद सम्पर्क टूट गया। एक व्याख्या के अनुसार, मुगल साम्राज्य के प्रसिद्ध बन्दरगाह सूरत को इस समय जिन आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा उसका महत्वपूर्ण कारण इन साम्राज्यों का पतन ही था।

अल्पकालिक संकटों ने पहले से चली आ रही राजकीय अनिवार्यताओं और स्थानीय अनिवार्यताओं के मध्य दीर्घकालिक संघर्षों में और भी वृद्धि की जिससे साम्राज्य को घुटने टेकने पड़े।

यहाँ कहने का तात्पर्य यह है कि मुगल साम्राज्य के केन्द्रीयकरण, विकेन्द्रीयकरण की अन्तर्जातीय प्रक्रियाओं और संकटों को समझने के लिए केन्द्र और स्थानीय क्षेत्रों के निरन्तर बदलते हुए, समझौतावादी संबंधों और कुलीन वर्ग तथा स्थानीय सरदारों के बीच निरन्तर तनावों को ध्यान में रखना होगा। ये रिश्ते कभी भी राजकीय आदेशों से निर्धारित नहीं किए जा सकते थे, वे हमेशा उजागर होते और बदलते रहते थे। अगर मुगल साम्राज्य का समझौतेवादी राजनीतिक संबंधों पर आधारित प्रतिष्ठान के रूप में विश्लेषण किया जाए तो उसके अन्तराल में गतिशीलता दिखाई देगी और इस गतिशीलता ने साम्राज्य के विभिन्न भागों में विभिन्न सामाजिक गुटों को साथ-साथ आने का मौका प्रदान किया। इससे साम्राज्य के विभिन्न भागों में प्रचलित भिन्न-भिन्न सामाजिक विन्यासों को व्याख्यायित किया जा सकता है। केन्द्र और राज्यों के बदलते हुए संबंधों से हमें क्षेत्रों और केन्द्र के मध्य अंतःसंबंधों का भी पता चलता है। साम्राज्य द्वारा केन्द्रीयकरण की जितनी कोशिश की गई, क्षेत्रीय समूहों को उतना ही अधिक लाभ प्राप्त हुआ, उन्होंने केन्द्रीयकरण की इस प्रक्रिया को अपनाया और उससे लाभ उठाया। साम्राज्य ने जैसे-जैसे राजस्व व्यवस्था द्वारा धन संचय किया, स्थानीय समूहों द्वारा उसके अतिक्रमण की प्रवृत्ति रही जिससे एक ओर आपसी संघर्ष बढ़ा, वहीं दूसरी ओर उनके द्वारा धन की अधिक से अधिक मात्रा में धन संचय की प्रवृत्ति को बल मिला।

1.5 क्षेत्रीय राज्य व्यवस्थाओं के उद्‌भव का सामाजिक-आर्थिक संदर्भ

अगर हम साम्राज्य का क्षेत्र-केन्द्रित परिप्रेक्ष्य अपनाएँ तो उसके पतन के वैकल्पिक रूप से नज़र आते हैं। यहाँ तक कि फारसी भाषा के स्रोतों में भी साम्राज्य के विकेन्द्रित और

नाजुक पहलुओं के विवरण हैं। उदाहरण के लिए, आंद्रे विंक *'फितना'* के सिद्धांत का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं कि राज्य व्यवस्था निरन्तर अंदर से ही विनाशकारी थी और गुटबंदी और अपकेन्द्रक शक्तियाँ केन्द्र से लगातार अलग हो रही थीं। स्टिफन ब्लेक द्वारा मुगल व्यवस्था की पैतृक-नौकरशाही (patrimonial-bureaucratic) व्याख्या उसका एक दूसरा पहलू है। इसका अर्थ यह है कि मुगल हमेशा विस्तृत रूप से एक व्यक्तिगत (पैतृक) और अत्यंत सैन्यीकृत और केन्द्रीय पहलुओं में संतुलन रखने के प्रयत्न में मानों एक तनी हुई रस्सी पर चलते रहे। इससे एक अजीब तरह की असंगति पैदा हो गई और जैसा एम.एन. पियर्सन कहते हैं, मुगल शासक एक पैतृक, अत्यधिक व्यक्तिगत शासन और अपनी सैनिक आकांक्षाओं के बीच की दरार को लांघ नहीं पाए। अपने सेना को कामयाब बनाने के प्रयत्न में वे एक स्वतंत्र सैन्य नौकरशाही प्रथा की स्थापना नहीं कर पाए। मुज़फ्फर आलम दर्शाते हैं कि किस प्रकार इस राजकीय प्रक्रिया को स्थानीय भद्र वर्ग अन्दर ही अन्दर काटकर अपनी स्थिति को और मजबूत बनाता रहा।

हम अब देखते हैं कि मुगल राज्य से पीछे हटने वाले कई दबाव थे। इनमें केन्द्र की गुटबंदी से लेकर स्थानीय और क्षेत्रीय विशिष्ट वर्गों द्वारा स्वयं को सुदृढ़ बनाना था। इन वर्गों की प्रकृति सब जगह एक-सी नहीं थी। अवध के लोग समाज के ऊँचे वर्ग के थे (*अशरफ*), बाकी स्थानों पर कुछ निम्न श्रेणी के तत्व भी शामिल थे जैसे पंजाब में जाट, किसान, या बंगाल में बसे हुए इलाकों के छोर पर स्थित सदगोप *ज़मींदारी*। महाजन और व्यापारियों ने इसमें विशेष भूमिका अदा की। वे कुछ पैसे देकर लागत की जिम्मेदारी लेते थे। अठारहवीं शताब्दी में नए आंचलिक विशेष वर्ग की यह विविधता इनकी प्रमुख विशेषता थी, जिससे हमें एक ऐसी व्यवस्था दिखाई देती है जो बहु-ध्रुवीय तनाव के थपेड़ों से परेशान थी। यह संकट ऐसे गुटों की आशंकाओं के दोबारा उदय होने से हुआ जिसे सी. ए. बेली 'कई तरह के सैन्य, व्यापारिक और राजनीतिक ठेकेदार' के नाम से संबोधित करते हैं। जिन्होंने एक साथ एकजुट होकर 'मुगल साम्राज्य के बढ़ते हुए व्यापार और उत्पादन का फायदा उठाया। इस उदय का अर्थ पतन नहीं है। इसका अर्थ है कि ऊपरी सतह के सामाजिक विस्थापन के साथ-साथ कुछ पुरानी संस्थाओं का स्थान नवीन संस्थाओं ने लिया और कुछ को पुनः संगठित किया गया।

अठारहवीं शताब्दी की राजनीतिक प्रक्रियाओं पर हाल के अध्ययन द्वारा तीन प्रकार की शासन प्रणालियों की ओर इशारा किया गया है। इनमें से प्रथम पहले से चली आ रही मुगल शासन प्रणालियों की प्रतिकृति थी। अवध और बंगाल के नवाब केवल नाम के ही मुगल *सूबेदार* थे और उत्तराधिकारी राज्यों के रूप में इन प्रान्तों पर राज कर रहे थे। इन्होंने मुगलों द्वारा शुरू की गई प्रथाओं और रीतियों को अपनाया। दूसरी श्रेणी में वे राज्य आते थे, जिनकी उत्पत्ति मुगल साम्राज्य से हटकर हुई थी। इनमें मराठा, जाट और सिख राज्य आते थे जिनके सुदृढ़ीकरण ने नए तंत्रों की स्थापना की जिनसे मुगल साम्राज्य को वास्तविक रूप से और निरन्तर रूप से खतरा था। तीसरी श्रेणी में आने वाली संरचनाएँ राजनीतिक अत्यंत महत्वपूर्ण थीं। इसमें मुसलमान तथा हिन्दू और आदिवासियों के कई स्थानीय प्रभाव क्षेत्र थे जो अर्ध-स्वाधीन राज्यों की सीमाओं पर स्थित थे। जाट *ज़मींदारों* द्वारा गंगा-यमुना दोआब क्षेत्र से भगाए जाने पर राजपूत वंशों ने पश्चिम में गुजरात से लेकर उत्तर में अवध तक, विजय, प्रवासन और व्यवस्थापन द्वारा छोटे-छोटे राज्यों की स्थापना की। रोहिलखण्ड और भोपाल में अफगान सरदारों ने विजय, ठेके पर राजस्व (*इजारा*) और दक्षिण-पश्चिम सीमावर्ती इलाकों के साथ व्यापार द्वारा अपने राज्यों की स्थापना की। बनारस राज और बंगाल में बुर्दवान और कासिम बाज़ार के ज़मींदारों ने कृषि-उपनिवेशिकता, राजस्व के ठेके (*इजारा*) और व्यापार द्वारा अपने राज्यों से संगठित किया। भारत की उत्तर-पूर्व सीमा में आहोम राजाओं ने मुगल साम्राज्य को 1680 के आसपास बढ़ने से रोका। इस हिन्दू वंश के राजाओं ने उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में अंग्रेजों के आक्रमण तक असम को स्वाधीन रखा।

दक्षिण में राजतंत्रवादियों का वास्तव में प्रमुख केन्द्रीयकरण मैसूर में 1760 के आसपास ही हुआ। डेविड लड्डन दर्शाते हैं कि उससे पहले की स्थिति यह थी कि तेलुगुभाषी *नायकों*

ने छोटे-छोटे राज्य बना रखे थे। वहीं कई *पलायाक्करार* या पोलिगार थे जिन्होंने *नायकों* के क्षेत्रों में अपने छोटे क्षेत्र बनाए जो मंदिरों पर आधारित थे और जिनका अत्यधिक मात्रा में सैन्यीकरण हुआ। मालाबार तट पर तटवर्ती राज्यों और *ज़मींदारों* घरानों में एक आशंकापूर्ण सन्धि का रिश्ता था जो व्यापार, भूमि और श्रम से प्राप्त होने वाले लाभ को पारस्परिक रूप में बाँट लेते थे। इस क्षेत्र में एक अन्तर्वेधी राजतंत्र का प्रारम्भ हैदर अली और टीपू सुल्तान के समय में मैसूर के आक्रमण के बाद हुआ।

बोध प्रश्न-2

1) ''अठारहवीं शताब्दी सार्वभौमिक रूप से अवनति की शताब्दी थी।'' टिप्पणी कीजिए।

....

....

....

2) सामाजिक-आर्थिक गतिविधियों के जीवंत केन्द्रों के रूप में उभरते क्षेत्रों के संदर्भ में आप अठारहवीं शताब्दी को कैसे देखेंगे?

....

....

....

1.6 सारांश

अठारहवीं शताब्दी की प्रमुख विशेषता मुगल साम्राज्य का पतन और कई क्षेत्रीय सत्ता केन्द्रों का विकास था। शताब्दी के मध्य अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कम्पनी की राजनीतिक सत्ता की स्थापना के साथ ही एक नया कारक सामने आया जिसका प्रभाव बहुत गहरा था। अठारहवीं शताब्दी की व्याख्या इतिहासकारों ने दो दृष्टिकोण से की है। कुछ साम्राज्य-केन्द्रित विचार के हैं। उनका मानना है कि मुगल साम्राज्य का पतन विध्वंसक था, जिससे 'अव्यवस्था और अराजकता' फैली। दूसरे क्षेत्र-केन्द्रित विचार के हैं। वे इस बात पर जोर देते हैं कि मुगल साम्राज्य के पतन के बावजूद 'अव्यवस्था और अराजकता' नहीं फैली। क्षेत्र विभिन्न सामाजिक एवं आर्थिक क्रियाओं की सरगरमी से गूँजने लगे और राजनीतिक समस्याओं के बावजूद भारतीय अर्थव्यवस्था का विस्तार हुआ। यह प्रक्रिया अंग्रेजों के प्रारम्भिक वर्षों में भी विघटित नहीं हुई, परन्तु इसमें कई बदलाव आए जिससे भारतीय अर्थव्यवस्था पर अभूतपूर्व बोझ पड़ा।

1.7 शब्दावली

चौधरी : अर्द्ध-वंशानुगत *परगना* स्तर का अधिकारी। उसका मुख्य कार्य राजस्व एकत्रित करना था।

***जागीरदारी* व्यवस्था** : आभिजात्य वर्ग को वेतन के बदले भूमि (इसके अनुसार कुलीन वर्ग के लोगों को वेतन के साथ भूमि) आवंटित की जाती थी। इस प्रकार आवंटित क्षेत्र *जागीर* कहलाते थे और उनका धारक *जागीरदार*। परन्तु *जागीरदारों* को भूमि नहीं बल्कि उस निश्चित क्षेत्र से आय/कर का अधिकार प्राप्त था। *जागीरें* अक्सर हस्तांतरणीय होती थीं।

***मनसबदारी* प्रथा** : *मनसब* का अर्थ है, पद। मुगल अधिकारी वर्ग में जो भी शामिल होता था उसको *मनसब* दिया जाता था। यह पद दोहरा था – *जात* और *सवार*। *ज़ात* से धारक का सरकारी पदानुक्रम में स्थान नियत होता था तथा इससे उसके व्यक्तिगत वेतन का निर्धारण होता था और सवार से यह पता चलता था कि *मनसबदारों* को कितने बड़े सैन्यदल (घोड़े, घुड़सवार और साधन) के रख-रखाव की ज़रूरत थी।

तालुकदार : *ज़मींदार* के स्थान पर प्रयुक्त होने वाला शब्द। यह शब्द सत्रहवीं शताब्दी

BHIC-134 (HINDI)_NEW SETTING.indd 17 24-03-2021 11:47:17

के अन्तिम वर्षों में प्रयोग में आया।

ज़मींदार : वंशानुगत रूप से उच्च अधिकारों का धारक। *ज़मींदार* को एकत्रित किए कुल राजस्व के हिस्से पर अधिकार प्राप्त था। साधारणतया उसे कुल एकत्रित कर का 10 प्रतिशत (हालांकि भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में यह 25 प्रतिशत तक था) मिलता था। जब *ज़मींदार* प्रशासन के लिए राजस्व एकत्रित करता था तो उसे *नानकर* कहा जाता था और जब प्रशासन उसे बीच में न लाकर सीधा कर एकत्र करता था तो *मालिकाना* पर अधिकार होता था।

1.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

1) भाग 1.2 देखें।

2) भाग 1.2 देखें।

बोध प्रश्न-2

1) भाग 1.4 देखें।

2) भाग 1.5 देखें।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

BHIC-134 (HINDI)_NEW SETTING.indd 18 24-03-2021 11:47:17